International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2024; 1(4): 28-32
© 2024 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 19-10-2024
Accepted: 23-10-2024
Publish : 26-10-2024

प्रो. गणेश बी. पवार
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कलबुरगी

Correspondence:
प्रो. गणेश बी. पवार
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय,
कलबुरगी

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे: काव्य का दक्षिण दीप

(रेखाचित्र)

प्रो. गणेश बी. पवार

भारतीय साहित्य की बहुवर्णी परंपरा में कुछ ऐसे साहित्यकार होते हैं, जिनकी रचनात्मक उपस्थिति किसी एक भाषा या क्षेत्र की सीमा में आबद्ध नहीं रहती, बल्कि वे संस्कृति, चेतना और संवेदना के ऐसे सेतु बन जाते हैं जो विविध भाषाओं और समाजों को एक साझा मानवीय मंच पर ला खड़ा करते हैं। ऐसे ही व्यक्तित्वों में दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे का नाम अत्यंत सम्मान और आदर के साथ लिया जाता है। वे केवल कन्नड़ साहित्य के प्रतिनिधि कवि नहीं थे, बल्कि संपूर्ण भारतीय काव्य-परंपरा के एक प्रखर, मौलिक और उदात्त स्वर भी थे।

बेन्द्रे का काव्य किसी भाषा की सीमा में बँधने वाला नहीं है। उसमें भारतीय लोकजीवन की गंध, आध्यात्मिक ध्वनि, और दार्शनिक अनुभूति इतनी सहजता से समाहित है कि वह समस्त भाषिक पाठकों को आत्मीय प्रतीत होती है। उनकी रचनाओं में जहां एक ओर वेदान्त, उपनिषदों, और संत-साहित्य की गूंज सुनाई देती है, वहीं दूसरी ओर लोकगीतों, कर्नाटक संगीत, और ग्रामीण जीवन की सजीव अनुभूतियाँ झलकती हैं। इस प्रकार, वे साहित्य के उस दुर्लभ संतुलन को साकार करते हैं जहाँ गंभीरता और सरलता, गाम्भीर्य और गेयता, और तत्त्व और रस का अद्वितीय संयोग होता है।

बीसवीं शताब्दी का भारत सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जिस संक्रमणकाल से गुज़रा, उसमें कई साहित्यकारों ने अपनी-अपनी भाषाओं में उस चेतना को स्वर दिया। परंतु जो कुछ कवि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आत्मा के प्रतीक बनकर उभरे, उनमें बेन्द्रे की गणना निःसंदेह की जाती है। वे अपने समय की हलचलों के सजग दर्शक तो थे ही, साथ ही मानव आत्मा के शाश्वत प्रश्नों के उत्तर खोजने वाले भी थे।

हिन्दी साहित्य-जगत के लिए बेन्द्रे का काव्य एक नयी संवेदना, एक नयी अनुभूति-दृष्टि का परिचय प्रस्तुत करता है। उनकी कविता केवल पंक्तियों में बंधे शब्द नहीं, बल्कि अनुभवों से उद्भूत 'जीवित अनुगूंजें' हैं, जो पाठक के अंतर्मन में चिरकाल तक गूंजती रहती हैं।

इस रेखाचित्र का उद्देश्य केवल बेन्द्रे के जीवन-वृत्तांत को प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि उनकी कविता की अंतःप्रकृति, दार्शनिक चेतना, भाषिक सौंदर्य और सांस्कृतिक संदर्भों को हिंदी के विद्वान पाठकों के समक्ष इस तरह रखना है, जिससे भाषाओं के बीच संवाद, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, और आध्यात्मिक साहित्य की पुनर्व्याख्या के लिए एक सशक्त आधार निर्मित हो सके।

जीवन परिचय:

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे का जन्म 31 जनवरी 1896 को धारवाड़ (वर्तमान कर्नाटक) में हुआ। यह क्षेत्र कन्नड़ साहित्य का प्रमुख केंद्र रहा है। बेन्द्रे का बचपन आर्थिक कठिनाइयों में बीता। पिता की अकाल मृत्यु और पारिवारिक विषमताओं ने उनके संवेदनशील मन पर गहरा प्रभाव डाला। इन्हीं जीवन-स्थितियों ने उनके भीतर एक करुणा-प्रवण दृष्टिकोण को जन्म दिया, जो बाद में उनकी कविताओं की आत्मा बना।

बेन्द्रे की प्रारंभिक शिक्षा धारवाड़ में हुई। उन्होंने बी.ए. की उपाधि प्राप्त की और तत्पश्चात अध्यापन से जुड़ गए। शिक्षा और साहित्य के बीच उन्होंने आजीवन संतुलन बनाए रखा। वे धारवाड़, हुब्बल्ली, बेंगलुरु, मैसूर आदि स्थानों में शिक्षक और प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहे। शिक्षा के साथ-साथ वे निरंतर लेखन, अनुवाद, संपादन और वक्तृत्व से भी जुड़े रहे।

काव्य यात्रा का प्रारंभ:

बेन्द्रे ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत 'अंबर' उपनाम से की। उनके काव्य में प्रारंभ से ही लोकजीवन, मानवीय पीड़ा और दर्शन की झलक देखने को मिलती है। वे न केवल एक कवि थे, बल्कि लोकगायक, रहस्यद्रष्टा और समाज-संवेदक भी थे। उनकी कविता शास्त्र और लोक के बीच एक सेतु बनती है।

उन्होंने 1922 में "गारी" नामक काव्य संग्रह से साहित्यिक मंच पर पदार्पण किया, जो आलोचकों के बीच अत्यंत सराहा गया। बाद में "सखीगीत", "नादलोला", "नाकु तंती", "मोदी", "अरिलिकट्टे" जैसे संग्रहों ने उन्हें कन्नड़ का प्रमुख स्वर बना दिया।

कविता की विशिष्टताएँ:

बेन्द्रे की कविता बहुस्तरीय है। वह एक साथ लोक और शास्त्र दोनों को साधती है। उनकी रचनाएँ सांगीतिक प्रवाह से युक्त होती हैं। शब्दों का चयन, लयात्मकता, प्रतीकों का प्रयोग और दर्शनात्मक गहराई उनकी विशेष पहचान है।

उनकी कविताएँ किसी प्रचारवादी विमर्श से नहीं जुड़तीं, अपितु आत्मानुभव और चित्त की गहराइयों से उपजती हैं। वे व्यक्ति के भीतरी संसार को समाज के साथ जोड़ते हैं। उनकी कविता में जीवन की अपूर्णता, पीड़ा और मुक्ति की आकांक्षा का सजीव चित्रण है। वे एक तरह से 'भवकवि' हैं, जिनकी दृष्टि में सृष्टि एक चमत्कार है और कविता उसकी भाष्यकला।

प्रमुख काव्य कृतियाँ: गारी (1922) उनका प्रथम काव्य संग्रह, जिसमें युवावस्था की पीड़ा, सामाजिक विषमताएँ और आत्मसंवेदना की तीव्रता देखी जा सकती है। नादलोला यह संग्रह ग्रामीण जीवन, लोकगाथा और प्रकृति की चेतना से परिपूर्ण है। इसमें वे एक कवि नहीं, एक ग्रामीण गायक के रूप में सामने आते हैं। सखीगीत प्रेम, पीड़ा और आत्मनिष्ठ संवाद की कविताएँ। इनमें स्त्री-विमर्श की प्रारंभिक झलक मिलती है। नाकु तंती (चार तार) यह संग्रह उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार दिलाने वाला रहा। 'चार तार' प्रतीक है चार जीवनसूत्रों का— जीवन, मृत्यु, प्रेम और मोक्ष। यह कृति दार्शनिकता और काव्य की चरमसीमा को छूती है।

दर्शन और लोक का समन्वय:

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे की कविता की एक अद्वितीय विशेषता यह है कि उसमें दार्शनिक गहराई और लोक-संवेदना का अद्भुत समन्वय मिलता है। वे न केवल कवि थे, बल्कि एक दृष्टा (Seer Poet) थे— ऐसे कवि जो अनुभव के पारदर्शी जल में उतरकर सत्य के बिंबों को शब्दों में उकेरते हैं।

उनकी काव्यदृष्टि का केंद्रीय स्तम्भ है — अद्वैत वेदांत। परंतु यह कोई शुष्क, वैचारिक, गूढ़ और जटिल ब्रह्मवाद नहीं है। बेन्द्रे के यहाँ अद्वैत का अर्थ है — जीवन के बहुरूपों में एकता का बोध। उनके लिए ब्रह्म केवल सैद्धांतिक तत्व नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय है। उनकी कविता में यह दर्शन न तो प्रचारित होता है, न आरोपित — वह सहज रूप में स्वतः प्रकट होता है, जैसे फूलों से सुगंध।

उदाहरण के लिए, जब वे प्रकृति, प्रेम, मृत्यु या लोकजीवन पर लिखते हैं, तो उनके शब्दों में किसी ज्ञानी की 'उपदेशात्मकता' नहीं, बल्कि एक साधक की 'अंतर्दृष्टि' होती है। इसीलिए उनकी कविताएँ पाठक को केवल 'पढ़ने' के लिए नहीं, 'अनुभव करने' के लिए आमंत्रित करती हैं।

लोक से गहरा रिश्ता:

बेन्द्रे की कविता की जड़ें कर्नाटक की लोक-चेतना में गहराई से धंसी हुई हैं। उनकी भाषा, प्रतीक, लय और विषय-वस्तु में लोकगीतों की स्पष्ट छाया मिलती है। वे 'शुद्ध' साहित्यिक भाषा के अनुशासन में नहीं बंधे, बल्कि उन्होंने अपने काव्य में लोक-बोलियों, गीतों और गाथाओं को पूर्ण स्वाभाविकता के साथ समाविष्ट किया।

विशेष रूप से उनके काव्य में भावगीत (भावनात्मक लोकगीत), तत्त्वपद (दर्शन आधारित गीत), और दासपद (भक्ति पद) की शैली झलकती है। ये सभी विधाएँ कर्नाटक के भक्तिसंप्रदायों की मौखिक परंपरा से गहराई से जुड़ी हुई हैं। इसलिए जब बेन्द्रे लिखते हैं, तो वे केवल 'स्वरचित' कवि नहीं होते, बल्कि पूरे लोकमानस की सांस्कृतिक-स्मृति के संवाहक बन जाते हैं।

भक्तिसंप्रदाय और संतवाणी का प्रभाव:

बेन्द्रे की चेतना पर लिंगायत और वैष्णव भक्त कवियों का गहरा प्रभाव रहा है। विशेषतः बसवेश्वर, अक्क महादेवी, अल्लम प्रभु और कनकदास जैसे संतों की कविताओं की प्रतिध्वनि उनके काव्य में सुनाई देती है। ये संत समाज-सुधारक भी थे और आत्मा की मुक्ति के लिए लोकधर्मी मार्ग का आग्रह करते थे।

अक्क महादेवी के जैसे बेन्द्रे की कविता में भी एक प्रकार की अन्तःवासी आत्मा से संवाद की प्रवृत्ति मिलती है। वे लौकिक प्रेम को अलौकिक अनुभव में रूपांतरित करते हैं। वहीं बसवेश्वर की भाँति उनकी कविता में एक तीव्र नैतिक विवेक भी विद्यमान रहता है, जो सामाजिक विघटन, विषमता और अज्ञान पर प्रहार करता है।

कविता: साधना, संवाद और समर्पण:

बेन्द्रे के लिए कविता मात्र रचना नहीं थी, वह एक साधना थी — एक आंतरिक तप, जो आत्मा को सत्य की ओर उन्मुख करता है। उनके शब्दों में लोक की धड़कन है, दर्शन की गहराई है, और भक्ति की निर्मलता भी।

उन्होंने दर्शन को दुरूह नहीं, लोकानुकूल और अनुभव-सुलभ बनाया। इसीलिए वे न तो केवल "तत्त्वज्ञानी" कवि हैं और न ही मात्र "लोककवि" — वे इन दोनों ध्रुवों के बीच स्थित एक संवादात्मक स्वर हैं, जो भारतीय साहित्य में दुर्लभ है। "लोक की भाषा में दर्शन

का उद्भव और दर्शन की गहराई में लोक की आत्मा — यही है बेन्द्रे की कविता की सबसे बड़ी पहचान।"

साहित्यिक योगदान और प्रभाव:

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे का साहित्यिक अवदान केवल एक कवि तक सीमित नहीं था; वे एक साथ संपादक, आलोचक, चिंतक, भाषाविद, शिक्षक और सांस्कृतिक कर्मयोगी भी थे। उनका रचनात्मक क्षितिज इतना व्यापक था कि उन्होंने कन्नड़ साहित्य की सृजनशील ऊर्जा को नए प्रतिमानों, नए विमर्शों और नई संवेदनाओं से समृद्ध किया।

संपादन और नवजागरण में भूमिका:

बेन्द्रे द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका 'नंदादीप' केवल एक प्रकाशन माध्यम नहीं थी, बल्कि बीसवीं शताब्दी के कन्नड़ नवजागरण की वैचारिक दीर्घा बन गई। इस मंच के माध्यम से उन्होंने समकालीन कन्नड़ साहित्य में समीक्षा की स्वस्थ परंपरा, नवीन काव्यविमर्श और आधुनिक चेतना को प्रतिष्ठित किया। 'नंदादीप' के माध्यम से उन्होंने अनगिनत नवोदित लेखकों, कवियों और समीक्षकों को पहचान, प्रोत्साहन और वैचारिक नेतृत्व प्रदान किया।

बेन्द्रे का मानना था कि साहित्य केवल आत्म-अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि समाज-निर्माण का सांस्कृतिक उपकरण भी है। यही कारण है कि उन्होंने साहित्यिक पत्रिकाओं को केवल रचना-प्रकाशन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें संवाद, विवाद, विश्लेषण और आलोचना के मंच में परिणत किया।

आलोचना और साहित्यचिंतन:

बेन्द्रे की आलोचनात्मक दृष्टि अत्यंत गहन, तार्किक और समन्वयी थी। वे उन विरले साहित्यकारों में थे जिन्होंने रचनात्मकता और विवेचनात्मकता — दोनों क्षेत्रों में समान अधिकार से योगदान किया। उन्होंने कन्नड़ साहित्य में काव्यशास्त्र, भाषा संरचना, सांस्कृतिक इतिहास और मानव-मूल्याधारित आलोचना के स्तरीय मानक स्थापित किए।

उनकी आलोचना न तो शुष्क विश्लेषण थी और न ही पूर्वग्रह-प्रेरित टिप्पणी; वह एक आत्मीय सहभाषा थी, जिसमें वे कृति और रचनाकार दोनों के आत्मबोध की गहराई तक पहुँचते थे। वे किसी रचना का केवल बाह्य मूल्यांकन नहीं करते, बल्कि उसके सांस्कृतिक, भाषिक और दार्शनिक संदर्भों में प्रवेश करते हुए उसकी अंतःप्रकृति को उद्घाटित करते थे।

पाश्चात्य और भारतीय परंपराओं में समरसता:

बेन्द्रे की बौद्धिक बनावट द्विकेंद्रित थी—एक ओर वे यूरोपीय आधुनिकता और पाश्चात्य काव्यशास्त्र से भली-भाँति परिचित थे, वहीं दूसरी ओर वे भारतीय काव्य परंपरा, नाट्यशास्त्र, ध्वनि और रस सिद्धांत, तथा भक्ति और वेदान्त दर्शन के गहरे अध्येता भी थे। उन्होंने टॉमस एलियट, मैथ्यू अर्नोल्ड, वाल्टर पेटर, और वर्ड्सवर्थ जैसे पाश्चात्य विचारकों के दृष्टिकोणों को समझा और उनका विवेकपूर्ण संवाद भारतीय काव्य-परंपरा से स्थापित किया।

परंतु उन्होंने पाश्चात्य आलोचना का अंधानुकरण नहीं किया; वे उसे केवल संदर्भ और दृष्टिकोण के रूप में ग्रहण करते हुए भारतीय साहित्य की मूल आत्मा को प्राथमिकता देते थे। इस समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण उनकी आलोचना में एक प्रकार की द्वन्द्वात्मक सौम्यता (dialectical balance) दिखाई देती है, जो उन्हें विशिष्ट बनाती है।

शिक्षण और बौद्धिक नेतृत्व:

बेन्द्रे का शैक्षिक जीवन भी अत्यंत प्रेरणाप्रद रहा है। धारवाड़, हुब्बल्ली और बेंगलुरु जैसे केंद्रों में उन्होंने प्रोफेसर के रूप में न केवल साहित्य का शिक्षण किया, बल्कि छात्रों के भीतर सृजनशीलता, चिंतन और सांस्कृतिक विवेक को जाग्रत किया। उनके अनेक शिष्य बाद में स्वयं प्रतिष्ठित साहित्यकार बने।

वे कक्षा में केवल पाठ नहीं पढ़ाते थे, बल्कि ज्ञान की चेतना का संचार करते थे। उनके लिए शिक्षा एक संवादात्मक प्रक्रिया थी, जिसमें शिक्षक और छात्र दोनों मिलकर विचार की यात्रा में सहभागी होते हैं। "दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे ने केवल कविता नहीं की, उन्होंने एक समूचे साहित्यिक युग की रचना की, जिसे आज भी 'बेन्द्रे युग' कहा जा सकता है।"

हिंदी साहित्य से संवाद:

यद्यपि दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे मूलतः कन्नड़ के अप्रतिम कवि थे, किंतु उनकी काव्य-दृष्टि, अनुभूति-संपन्नता और सांस्कृतिक सरोकारों की व्यापकता ने उन्हें भाषायी सीमाओं से परे ले जाकर भारतीय साहित्य की समेकित चेतना का प्रतिनिधि बना दिया। हिंदी साहित्य-जगत में भी उनका उल्लेख विशेष श्रद्धा, रुचि और जिज्ञासा के साथ हुआ है — विशेषतः उन विचारशील कवियों और आलोचकों के द्वारा, जो बहुभाषिक भारत की आत्मा को समझने का प्रयास करते रहे हैं।

हिंदी कवियों की स्वीकृति:

बीसवीं शताब्दी के जिन हिंदी कवियों ने दक्षिण भारतीय साहित्य की ओर गंभीर दृष्टि डाली, उनमें सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, और कुबेरनाथ राय जैसे साहित्यकारों ने बेन्द्रे के काव्य का उल्लेख किया। अज्ञेय ने अपनी नवलेखन यात्रा में, "तीसरी परंपरा" की चर्चा करते समय दक्षिण और उत्तर भारतीय साहित्य के बीच "अनुभव की सांस्कृतिक संगति" पर बल दिया था, जिसमें बेन्द्रे जैसे कवियों का रचनात्मक अवदान विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा।

धर्मवीर भारती ने एक स्थान पर लिखा था कि "बेन्द्रे की कविता वह दुर्लभ स्थिति है जहाँ आत्मा लोक में और लोक आत्मा में प्रतिबिंबित होता है।" इसी प्रकार नरेश मेहता, जो स्वयं भी भारतीय संस्कृति और वैदिक तत्वदर्शन से प्रभावित कवि थे, उन्होंने बेन्द्रे को "द्रविड़ भाषाओं के रवींद्र" की संज्ञा दी थी।

अनुवाद, अध्ययन और समन्वय की आवश्यकता:

यद्यपि बेन्द्रे की कुछ प्रमुख रचनाओं का हिंदी में अनुवाद हुआ है, फिर भी यह कार्य अब तक बहुत सीमित, विखंडित और अपूर्ण स्तर पर ही संपन्न हुआ है। हिंदी भाषी पाठकों को उनकी काव्य-संवेदना,

भाषिक लय और सांस्कृतिक संदर्भों तक सम्यक् रूप से पहुँचाने के लिए उनके कविता-संग्रहों, आत्मवृत्तांतों, आलोचना-निबंधों और पत्र-साहित्य का शास्त्रीय और भावानुवाद किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

इसके साथ-साथ हिंदी अकादमिक जगत में बेन्द्रे के साहित्य पर शोध, तुलनात्मक अध्ययन तथा भाषाई अंतःसंवाद पर केंद्रित संगोष्ठियाँ, शोध-प्रबंध और आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना भी होनी चाहिए, जिससे उनका साहित्य केवल 'कन्नड़ साहित्य की थाती' बनकर न रह जाए, बल्कि वह हिंदी जगत के लिए भी वैचारिक समृद्धि और सांस्कृतिक आत्मबोध का स्रोत बन सके।

सांस्कृतिक समरसता का सेतु:

बेन्द्रे की कविताएँ हिंदी साहित्य के लिए केवल अनुवादनीय पाठ नहीं हैं, वे संवेदना और बिंब-विश्व की साझी संपत्ति हैं। उनकी कविताओं में जो रहस्यात्मकता, अंतरंग आत्मीयता और लोक-मानस का सहज गान है, वह हिंदी साहित्य को न केवल एक नया काव्य-परिदृश्य प्रदान करता है, बल्कि एक दूसरे भारत से परिचय भी कराता है — एक ऐसा भारत जो दक्षिण की बोली में उत्तर की पीड़ा गाता है और उत्तर की चेतना को दक्षिण की ध्वनि में ढालता है।

अतः बेन्द्रे के काव्य को हिंदी साहित्य से जोड़ना केवल साहित्यिक आदान-प्रदान नहीं है, यह भारतीय भाषाओं की सांस्कृतिक एकात्मता को सजीव करने का एक शास्त्रीय प्रयत्न भी है। "कविता जब आत्मा से निकलती है, तो वह अनुवाद की नहीं, अनुभव की भाषा बन जाती है — बेन्द्रे की कविता यही भाषा बोलती है और हिंदी साहित्य से उसका संवाद इसी स्तर पर संभव है।"

सम्मान और स्वीकृति:

बेन्द्रे को 1973 में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ, जो उनके काव्य संग्रह "नाकु तंती" के लिए दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें पद्मश्री, कन्नड़ साहित्य अकादमी, राष्ट्रीय कवि सम्मान, और अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा डॉक्टरेट की उपाधियाँ मिलीं।

मानवीय पक्ष: एक संत-कवि:

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे केवल एक प्रतिभाशाली कवि नहीं थे, वे एक जीवंत मूल्य-पुरुष, एक काव्य-संन्यासी और एक संवेदना-समृद्ध मानव-आचार्य थे। उनके व्यक्तित्व की गरिमा का मूल स्रोत न तो यश था, न पुरस्कार — बल्कि वह आत्मानुशासन, सहजता और आत्मबोध की आभा थी, जो उन्हें उनके समकालीनों से विलक्षण बनाती थी।

उनकी जीवन-शैली में एक प्रकार का ऋषितुल्य तपस्वित्व दिखाई देता है। अत्यंत सादगीपूर्ण जीवन, सीमित भौतिक संसाधन, किन्तु असीम आत्मबल — यही उनकी आत्म-छवि थी। वे न तो किसी वाद से बँधे, न ही किसी प्रचार से आकर्षित हुए। उनके लिए कविता न व्यवसाय थी, न प्रसिद्धि का साधन; वह आत्मा की साधना, आत्म-शुद्धि और आत्म-विस्तार का पथ थी। यही कारण है कि उन्हें उनके सहकर्मी और शिष्य एक संत-कवि के रूप में स्मरण करते हैं — एक ऐसे व्यक्ति के रूप में, जो कविता नहीं लिखता था, बल्कि उसे जीता था।

शिक्षण: एक आध्यात्मिक संवाद:

बेन्द्रे का शिक्षण कर्म केवल अकादमिक नहीं था, वह उनके भीतर बसे काव्य-ऋषि के आचरण का प्रतिफल था। धारवाड़, हुब्बल्ली और बेंगलुरु के छात्रों के लिए वे मात्र एक प्रोफेसर नहीं, बल्कि एक प्रेरणादायी गुरु थे, जो पठन-पाठन को जीवन के आध्यात्मिक बोध से जोड़ते थे।

एक संस्मरण में उनके छात्र लिखते हैं — "बेन्द्रे सर के पास जाना ऐसा था जैसे किसी मंदिर की शांति में प्रवेश करना। वे कविता नहीं पढ़ाते थे — वे उसे जिया करते थे। उनका हर शब्द, हर व्याख्या, भीतर तक उतर जाती थी।"

वे छात्रों के साथ औपचारिक दूरी नहीं, बल्कि एक आत्मिक संगति स्थापित करते थे। उनकी भाषा में न बड़प्पन का दंभ था, न ज्ञान का प्रदर्शन — बल्कि विनम्रता, आत्मीयता और संवेदना का गहरा स्पर्श था। यही कारण है कि अनेक छात्रों ने उन्हें "जीवित श्लोक" कहा — एक ऐसा जीवंत पाठ जो केवल पुस्तकों में नहीं, बल्कि जीवन के व्यवहार में भी उपस्थित रहता है।

आडंबरहीनता और आत्मसंयम:

बेन्द्रे का संपूर्ण जीवन बाह्य आडंबर, प्रदर्शन और आत्मप्रचार से कोसों दूर रहा। उन्होंने कभी भी साहित्यिक पुरस्कारों, पदों या राजनीतिक सरोकारों में अपनी ऊर्जा नहीं लगाई। उनका सम्पूर्ण ध्यान कविता, चिंतन और समाज के सांस्कृतिक उत्थान में रहा।

उनकी वेशभूषा सादी होती थी — प्रायः सफेद धोती, कुर्ता और एक शांत मुखमंडल। उनका निवास भी अत्यंत सादा था, किंतु उसमें कविता, पुस्तकें और विचारों की उजास रहती थी। उनके अतिथि-कक्षों में प्रसिद्ध साहित्यकारों से अधिक लोककवियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और ग्रामीण गायकों की उपस्थिति अधिक देखी जाती थी।

एक अनासक्त साधक:

बेन्द्रे के जीवन में अनासक्ति एक केंद्रीय मूल्य था — न यश का मोह, न पद की आकांक्षा और न ही प्रतिस्पर्धा की चिंता। उन्हें जो कुछ मिला, उसमें उन्होंने संतोष पाया; और जो कुछ नहीं मिला, उसके लिए उन्होंने कभी हृदय में खेद नहीं रखा। उनकी यह कर्मयोगी दृष्टि उन्हें गीता के निष्काम कर्मयोगी की पंक्ति में ला खड़ा करती है। वे अक्सर कहा करते थे — “कविता को लिखने के लिए पहले स्वयं कविता बनना पड़ता है।” और उनके जीवन ने यह साक्षात सिद्ध किया कि कवि का सबसे बड़ा काव्य उसका जीवन होता है। “दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे का जीवन स्वयं एक काव्य था — निर्लेप, निश्छल और निःशब्द साधना से भरा हुआ। वे साहित्य के तपस्वी थे — और ऐसे संत-कवि, जो हमारे युग में दुर्लभ हैं।”

दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे की काव्य-साधना मात्र साहित्यिक उपक्रम नहीं थी, वह आत्मा की साधना थी — एक ऐसा यज्ञ, जिसमें उन्होंने शब्दों को मंत्र बना कर, अनुभूतियों को आहुति दी और कविता को ऋचाओं की गरिमा प्रदान की। वे न केवल एक कवि थे, बल्कि भारतीय लोकचेतना के मौन मुनि थे, जिनकी दृष्टि में जीवन एक लीला थी और कविता उस लीला की अंतर्ध्वनि।

बेन्द्रे का काव्य हमारे समय के लिए इसलिए भी अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि उन्होंने कविता को न किसी राजनीतिक वाद का औजार बनाया, न ही वह किसी विचारधारा के अनुबंध में बंधी। उन्होंने मानव की करुणा, प्रकृति की चिरंतनता और आत्मा की दिव्यता को काव्य का केंद्र बनाया। इसीलिए उनकी कविता में न कभी अतिरेक है, न कृत्रिमता; वहाँ जो है वह स्वाभाविक, सहज और सत्वगुण से परिपूर्ण है।

आज जब वैश्वीकरण के दबाव में लोक-संवेदना क्षीण हो रही है, भाषा की जड़ें उखड़ रही हैं और कविता छंद से, लय से, भाव से कटती जा रही है — तब बेन्द्रे का स्मरण हमें पुनः "कविता के मूल धर्म" की ओर लौटने का आह्वान करता है। वे हमें यह सिखाते हैं कि कविता केवल अभिव्यक्ति नहीं, एक आंतरिक अनुष्ठान है; एक आत्मिक प्रयोग, जो कवि और पाठक दोनों को रूपांतरित कर सकता है।

हिंदी साहित्य के लिए बेन्द्रे एक प्रेरणा के रूप में प्रतिष्ठित हो सकते हैं — विशेषकर उन पाठकों और विद्वानों के लिए, जो भारतीय भाषाओं के बीच संवाद, सेतु और सहभाव की आकांक्षा रखते हैं। उनके जीवन और रचनाओं का अध्ययन हिंदी में भाषा-संवाद की एक सशक्त परंपरा को जन्म दे सकता है।

बेन्द्रे ने यह सिद्ध किया कि कविता जब हृदय से निकलती है, तो वह किसी एक भाषा की नहीं होती, वह सम्पूर्ण मानवता की निधि बन जाती है। वे कन्नड़ के थे, पर उनकी आत्मा भारतीय थी; उनकी कविता की लय बेशक दक्षिण की थी, लेकिन उसकी धड़कन सम्पूर्ण राष्ट्र की थी।

अंततः, बेन्द्रे को समझना एक व्यक्ति को नहीं, एक संपूर्ण काव्य-दृष्टि को समझना है — जो शब्द को ब्रह्म मानती है, लोक को देवता और कविता को तप। उनकी यह साधना अनश्वर है, अमिट है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए आलोक-स्तंभ है।

“जो कवि केवल रचता है, वह सीमित होता है। जो कवि जीता है — वह कालातीत होता है। दत्तात्रेय रामचंद्र बेन्द्रे ऐसे ही एक कालातीत कवि हैं।”